रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादन

सतीश कुमार राय

अशोक गुप्त

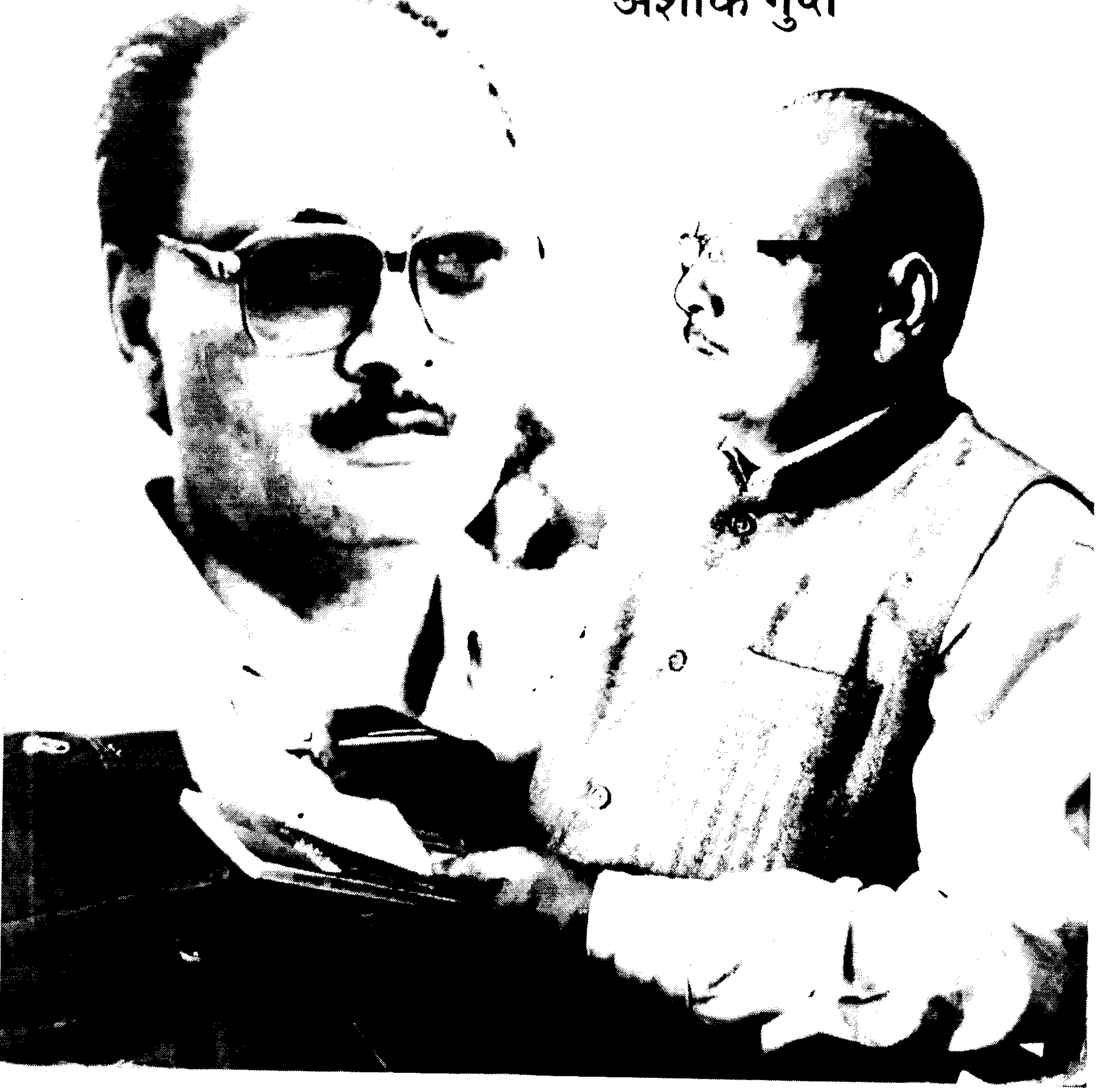

रेवती रमण होने का अर्थ

सम्पादक

सतीश कुमार राय

अशोक गुप्त

अभिधा प्रकाशन

प्रथम संस्करण
2020
सर्वाधिकार
सम्पादक

प्रकाशक
अभिधा प्रकाशन
रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002

अक्षर-संयोजन
एस. कुमार

मुद्रक
बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

मूल्य
225/- (दो सौ पच्चीस रुपये)

Rewati Raman Honey Ka Arth
Edited By **Dr. S.K. Rai & A. Gupta** **Rs. 225.00**

अनुक्रम

सम्पादकीय		: सतीश कुमार राय	7
प्रस्तुति		: अशोक गुप्त	21
1.	साथ चलते हुए	: विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	23
2.	हिन्दी साहित्य के चर्चित आलोचक...	: रिपुसूदन श्रीवास्तव	26
3.	आलोचना का कालयात्री	: मदन कश्यप	32
4.	रेवती रमण की आलोचकीय सक्रियता	: रामप्रवेश सिंह	36
5.	डॉ. रेवती रमण की आलोचना-दृष्टि	: विजयशंकर मिश्र	42
6.	साक्षात्कार	: राकेश रंजन	46
7.	साक्षात्कार	: कल्याण कुमार झा	57
8.	समय की रंगत	: अंजना वर्मा	66
9.	एक आलोचक का कवि	: पूनम सिंह	71
10.	अजनबियों के संग चल रहा थका अकेला	: राकेश रंजन	77
11.	कविता और मानवीय संवेदना	: जगदीश विकल	84
12.	युवा समीक्षक का प्रबुद्ध समीक्षात्मक विवेक?	: वेदप्रकाश अमिताभ	90
13.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य	: कृष्णचन्द्र लाल	94
14.	समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य...	: रवीन्द्र उपाध्याय	99
15.	रचना की तरह आलोचना	: रमेश ऋतंभर	103
16.	रेवतीरमण का 'समकाल'	: प्रेमशंकर रघुवंशी	105
17.	'कविता में समकाल' एक समीक्षा कृति	: श्रीराम परिहार	108
18.	संघर्ष तपी काव्य-साधना का संधान	: शेखर शंकर मिश्र	115
19.	जातीय संवेदना के सजग साहित्य चिन्तक	: संध्या पाण्डेय	121
20.	जातीय मनोभूमि की तलाश	: अनन्तकीर्ति तिवारी	125
21.	सहज-सरल, स्वाभिमान की आवाज	: सुशांत कुमार	130
22.	'आवाज के परिन्दे' और उनके सलीम अली	: अनामिका	134
23.	समकालीन कविता की पुख्ता पहचान	: रामेश्वर द्विवेदी	141
24.	कवियों की गली से गुजरता कवि आलोचक	: उज्ज्वल आलोक	147
25.	पुस्तकों के फ्लैप से		153
चिट्ठी-पत्री			155
चित्रावली			191

रेवती रमण होने का अर्थ

अनवरत साधना, कठिन संघर्ष और अदम्य संकल्प से निर्मित एक रचनात्मक व्यक्तित्व का नाम है प्रो. रेवती रमण। रेवतीजी संवेदनशील कवि हैं, सहृदय आलोचक हैं, कुशल अध्यापक हैं, सद्गृहस्थ हैं और अत्यंत सहज और शीलवान मनुष्य भी। 16 फरवरी, 1955 ई० को पूर्वी चंपारण के एक गाँव महमादा चौबे टोला में जनमे रेवतीजी ने कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए अपना निर्माण स्वयं किया। निम्न-मध्यवित्तीय परिवार की आर्थिक कठिनाइयों से जूझने के बावजूद इनके पिता स्व० सत्यदेव प्रसाद और माँ स्वर्गीया गुलाबी देवी ने इन्हें प्राथमिक सुविधाएँ प्रदान कीं। रेवतीजी ने अपने माता-पिता के सपने को अपना लक्ष्य बना लिया। मेहसी से उच्च विद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये मुजफ्फरपुर आए। अपने बड़े भाई के किराए के छोटे से मकान के बरामदे में रहकर इन्होंने आगे की पढ़ाई की। रात-रात भर जगकर ये अध्ययन करते थे। 1972-74 सत्र में इन्होंने लंगट सिंह महाविद्यालय से ससम्मान हिंदी प्रतिष्ठा की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। 1974-76 सत्र में ये स्नातकोत्तर हिंदी के छात्र थे। सत्र विलंबित होने के कारण इनका परीक्षाफल 1978 में प्रकाशित हुआ। उसी समय समस्तीपुर के बलिराम भगत महाविद्यालय में इनकी नियुक्ति हुई। 1979 ई० में भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा ये साहेबगंज कॉलेज में नियुक्त किए गए। 1980 ई० में इनकी नियुक्ति बिहार विश्वविद्यालय में हुई और 11 जनवरी को इन्होंने स्नातकोत्तर हिंदी विभाग में व्याख्याता के रूप में योगदान किया। 1984 में इन्हें पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। 1988 में ये रीडर और 1996 में प्रोफेसर बने।

रेवतीजी पूरे मनोयोग से अध्यापन करने वाले समर्पित शिक्षक रहे हैं। उनसे मेरी पहली मुलाकात 1983 में हुई, जब मैं एम.ए. के सत्र 1982-84 में नामांकन के संदर्भ में मुजफ्फरपुर आया था। पहली बार हम लोग मोतीझील साहित्यालोक में मिले। अपनी सहजता और आत्मीयता से उन्होंने मुझे अभिभूत कर दिया। फिर मैं उनका छात्र बना। छात्रों के साथ उनका संबंध प्रायः मित्रवत् था। वे दंभ से मुक्त एक सहज मार्गदर्शक के रूप में बराबर अपने विद्यार्थियों को उपलब्ध

रहते थे। संध्या में युवा साहित्यकारों के साथ उनके कई विद्यार्थी सफी दाउदी मार्केट स्थिर शेर सिंह की चाय की दुकान पर उनके साथ अड्डा जमाते और साहित्य और संस्कृति के संबंध में उनसे संवाद करते।

1993 में जब मैं मगध विश्वविद्यालय से स्थानांतरित होकर बिहार विश्वविद्यालय में आया और उनका कनीय सहकर्मी बना, तो उनका अत्यधिक स्नेह और सहयोग मुझको प्राप्त हुआ। विश्वविद्यालय के शिक्षक-आवास में हम दोनों ऊपर-नीचे के क्वार्टर में रहते थे। रेवतीजी उस समय आलोचक के रूप में स्थापित हो गए थे। नई-से-नई पुस्तक को मँगाना, उस पर विमर्श करना उनका स्वभाव बन गया था। जिस अनुपात में वे पढ़ते थे, प्रायः उसी अनुपात में लिखते भी थे। मैं चकित होकर उनके इस सार्थक श्रम को और उसकी रचनात्मक उपलब्धियों को निकट से देखता था। निस्संदेह रेवतीजी की सिद्धि उनके कठोर अध्यवसाय और निरंतरता की देन है।

पद्मश्री श्यामनंदन किशोर की तरह रेवतीजी तीन-तीन बार हिंदी विभागाध्यक्ष बने। विभाग को एक परिवार के रूप में विकसित करने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अध्यक्षीय व्यस्तता के बावजूद उनका लेखन मंद नहीं हुआ, कक्षाओं में उनकी उपस्थिति पूर्ववत् बनी रही। उनकी सहजता और सद्भावनापूर्ण आचरण ने हम सबको प्रोत्साहित किया। लगा कि पद उन पर हावी नहीं है। उनकी मनुष्यता उनके पद को नियंत्रित कर रही है। अपने सहयोगियों के साथ इतनी आत्मीयता आज के बाजारीकरण के दौर में दुर्लभ है। किसी शायर ने कहा है–

हस्ती को मुहब्बत में फना कौन करेगा,
यह फर्ज अदा मेरे सिवा कौन करेगा।।

निस्संदेह रेवतीजी ने हस्ती को मुहब्बत में फना करके अपनी सादगी और अपने अहंकार-शून्य व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

रेवतीजी शिक्षक होने के साथ एक समर्थ शोध-निर्देशक भी रहे हैं। उनके मार्गदर्शन में एक शोधार्थी को डी.लिट्. और दो दर्जन शोधार्थियों को पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। ऐसे शोधार्थियों में प्रसिद्ध कवयित्री रश्मिरेखा, कवि-कथाकार रामेश्वर द्विवेदी, प्रखर साहित्यकार संजय पंकज और युवा कवि-प्राध्यापक रमेश ऋतंभर उल्लेखनीय हैं। राजनीतिक कार्यकर्ता और शिक्षा-जगत् से संबद्ध अनेक शोधार्थियों ने इनके मार्गदर्शन का लाभ उठाया है। ऐसे लोगों में मनोज कुमार सिंह, राधा कुमारी जैसे नाम लिए जा सकते हैं। विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर धीरेंद्र प्रसाद राय ने इन्हीं के मार्गदर्शन में 1989 में शोधकार्य संपन्न किया था और पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। एक शोध-निर्देशक के रूप में रेवतीजी

गंभीर भी हैं और सहयोगी भी। अपने कुशल मार्गदर्शन से शोधार्थियों से सफल और सार्थक शोध करा लेने के कारण भी ये विशिष्ट हैं। डॉ० रमण ने लगभग दो दर्जन राष्ट्रीय संगोष्ठियों में वक्ता के रूप में अपनी वाग्मिता और विषय-मर्मज्ञता का साक्ष्य दिया है। महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के सौ वर्ष पूरे होने पर डबरन और जोहान्सबर्ग में होनेवाले भारत महोत्सव के आठ सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल में सम्मिलित होकर इन्होंने गांधी-दर्शन पर व्याख्यान दिया और अपनी बहुज्ञता सिद्ध की।

रेवतीजी का लेखन विद्यार्थी-जीवन में ही प्रारंभ हो गया था, लेकिन ये चर्चा में आए 1983 ई० में। इसी वर्ष 'दस्तावेज' और 'साक्षात्कार' जैसी पत्रिकाओं में इनके लेखक छपने प्रारंभ हुए। नब्बे के दशक में ये हिंदी की लगभग सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। पुस्तक-समीक्षा, कविता और आलोचना के क्षेत्र में ये निरंतर सृजन-रत रहे।

रेवतीजी के भीतर एक अत्यंत संवेदनशील और जागरूक कवि है, जो समय की रंगत को पहचानता भी है और अपने समय-संदर्भों से संवाद भी करता है। उनका पहला काव्य-संग्रह 'समय की रंगत' 2001 ई० में अभिधा प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। ब्लर्ब लिखते हुए ध्रुवनारायण गुप्त ने सच ही कहा है—"यह एक अच्छी खबर है कि पिछले दो दशकों से लगातार अपने आलोचनात्मक गद्य से सार्थक हस्तक्षेप करने के अतिरिक्त रेवती रमण कविताएँ भी लिखते रहे हैं। ऐसी कविताएँ, जिसमें वे अपने साथ हैं, अपने अंतर्विरोधों और सृजनात्मक विकलता के साथ। अपने अंतरंग और इतिहास बनते समय से गले मिलते कई बार उससे मुठभेड़ की मुद्रा में। इन कविताओं में यथार्थ है और स्वप्न भी। भाषा द्वंद्वात्मक अनुभूतियों की एक आकर्षक मुद्रा है। संघर्ष श्रांत किंतु कई बार बदलाव की परिस्थिति और संभावना से अनुगूँजें उगाहते हुए।" 'समय की रंगत' की कविताओं में वैविध्य है, संवेदना के स्तर पर भी और शिल्प के स्तर पर भी। संग्रह की पहली कविता 'अभी तो' में क्षरणशील होते जीवन-मूल्यों और बदलती आस्थाओं पर चिंताकुल होकर कवि का कथन है—

जब होगा
अंतिम जवनिका-पतन
तो जोर-जोर से बाँचे जाएँगे साम्य-सद्भाव के लिए
लंबे अपशकुन के आलेख
सुनकर बधिर हो जाएँगे वसुंधरा के बेटे
अर्थहीन नहीं है नीरव

मंगलाचरण और भरत वाक्य का निषेध
संकेत है नटी की चीख
कि यातना चलेगी अंतहीन। (पृ.-11)

इन पंक्तियों में कितनी गहरी अर्थवत्ता है। एक साथ वेदना और व्यंग्य का विनियोग कवि के रचना-चातुर्य का प्रमाण है। संग्रह की दूसरी कविता 'इक्कीसवीं शताब्दी' में यह व्यंग्य और गहरा हो जाता है। यंत्रवत् होते जीवन और वैज्ञानिक विकास की परिणति को कवि ने इन शब्दों में रेखांकित किया है–

इक्कीसवीं शताब्दी में आज का चमत्कार
केवल चमत्कार नहीं रह जाएगा अंतरिक्ष-युद्ध
महाशक्तियों में मचेगा घमासान
तो विवाद का विषय एक यह भी होगा
कि मंगल ग्रह पर क्या उगाएँ
मेथी या नागफनी? (पृ.-11)

और,

आप भी जरा सोचिए
इक्कीसवीं शताब्दी की थरथराती उँगलियाँ
एक दिन जब दबाएँगी युद्ध के बटन
तो क्या
रसातल में नहीं चली जाएगी
इक्कीसवीं शताब्दी? (पृ.-12)

संग्रह की कई कविताओं में कवि का यथार्थबोध मुखर हो उठा है। आज के भयावह समय में कवि की चिंता उसे आहत करती है और कुछ अंशों में अवसाद-ग्रस्त भी, किंतु इसके बावजूद वह एक नई सुबह के लिए आशान्वित है। रचना का आलोक अवसाद के अंधकार को भेद सकता है, यह इस संग्रह की कई कविताओं से स्पष्ट व्यंजित होता है। कवि का संसार प्रेम का संसार है और प्रेम ही आज के भयावह समय से मनुष्य को बचा सकता है। कवि ने कितनी सहजता के साथ यह स्थापना दी है–

प्रेम की पाती प्रसन्नता है कागज की
कागज से बड़ा अबतक नहीं बन पाया
दुनिया में कोई रेल-मार्ग
कोई पुल, कोई प्लेटफार्म। (पृ.-21)

'कागज' के साथ 'कलम' के महत्त्व को भी कवि ने इन शब्दों में व्यक्त

किया है–

एक दिन जब काम नहीं आएँगे ए.के. सैंतालीस
और होंगे रॉकेट लांचर बीमार परेशानहाल
तब भी कलम चलाती रहेगी अपने हाथ-पाँव
बेधड़क उतर जाएगी बेगवती नींद की नदी में
स्वप्न के थपेड़ों से सहलाती
इच्छाओं के तुरंग पर सवार

कलम है तो कायम रहेगी यह दुनिया
कयामत के दिन भी। (पृ.-23)

कवि कागज-कलम के साथ किताबों का महत्त्व भी रेखांकित करता है। किताबों की दुनिया वस्तुतः कभी नष्ट नहीं होती। वह कालातीत होकर पाठको से संवाद करती रहती है। आतंक और अत्याचार के विरोध में किताबें बराबर तनकर खड़ी हुई हैं। कवि का कथन है–

किताबें हँसती हैं
आत्मा की उदास उजली हँसी
आततातियों के आतंक और दहशत को मुँह चिढ़ाती
अग्रगामी मति की अचूक रणनीति

समय देवता!
तुम्हारी लक्ष्मण रेखा को
कहाँ मानती है किताब
आदि से अंत तक
झिलमिलाती यशःकाया। (पृ.-25)

कवि ने आज के बाजारवाद के यथार्थ और विज्ञापन की संस्कृति को भी पूरी तीव्रता के साथ उजागर किया है। कुंद होती मनुष्यता और अजनबी हो रहे संबंधों की त्रासद स्थिति और उसके खतरे को संग्रह की कई कविताओं में पूरी तरह उजागर किया गया है। हथियारों की प्रतिस्पर्धा के बावजूद मनुष्यता की विजय-यात्रा के प्रति कवि आश्वस्त है। 'समानांतर' शीर्षक छोटी कविता में कितनी सहजता से इस तथ्य को उभारा गया है–

अश्वारोहियों का हुजूम
राजपथ पर चलता
देख रहा है मेरा बच्चा

अनंत की गोद में
करता अठखेलियाँ
दिगंत की नीरव निस्पंदता
भंग करती है उसकी तुतलाहट
आतंकवादी टार्पो के समानांतर। (पृ.-61)

इस संग्रह में प्रेम-कविताएँ भी हैं और कवि के सौंदर्य-बोध को मुखर करनेवाली कविताएँ भी। दंगा, आतंक और विद्वेष का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करनेवाली कविताओं के अतिरिक्त ऐसी कविताएँ भी कम नहीं हैं, जिनमें कवि की प्रेम-दृष्टि पूरी तरह व्यक्त हो उठी है। 'सिंहल द्वीप' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

अमर प्रेम के प्यासे कवि की
कोरी कल्पना नहीं है सिंहल द्वीप
अपने ही अनुभवों की किताब में
पढ़े जिनने ढाई आखर
पता है उन्हें
वहाँ प्रेम में कभी नहीं होता है वियोग।

रूप की दृष्टि से भी इसमें कई प्रकार की कविताएँ हैं। सॉनेट में कवि की लयात्मकता और शिल्पगत विशेषता पूरी तरह झलकती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'समय की रंगत' संग्रह की कविताओं में अपने समय-संदर्भों से साक्षात्कार करने और उनके भीतर तक उतरने की पूरी शक्ति निहित है। कवि ने अपने समय की हर रंगत को, हर स्थिति को, हर परिवेश को अत्यंत जीवंतता के साथ चित्रित किया है।

रेवतीजी आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किन्तु उनकी आलोचना की मूल शक्ति उनकी कवि-संवेदना ही है। रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, नेमिचंद्र जैन की तरह उनकी भी प्रारंभिक विधा कविता ही है। सच तो यह है कि कविता ही उनके साहित्यिक लेखन का प्रवेश-द्वार है।

रेवतीजी समकालीन हिंदी आलोचना में अपना अलग स्थान बना चुके हैं। इस स्थान को बनाने में उनके अध्यवसाय और अध्ययन-वृत्ति का विशेष योगदान है। 1983 से ही उनकी आलोचनाएँ महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं, किंतु उन्हें गंभीर आलोचक के रूप में पहचाना गया उनके पहले आलोचना-संग्रह 'कविता और मानवीय संवेदना' से। 1991 में राजेश प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित इस संग्रह में मुक्तिबोध, नागार्जुन, शमशेर, अज्ञेय, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अशोक वाजपेयी, धूमिल, राजेश जोशी और ज्ञानेंद्रपति की कविताओं का

गहन विश्लेषण किया गया है। संग्रह की भूमिका में ही रेवतीजी कहते हैं—"अपने को बचाकर या स्थगित कर अन्य के ग्रहण का दिखावा एक कुटिल कूटनीति के लिए जरूरी और प्रासंगिक हो सकता है, लेकिन एक कवि के लिए बिल्कुल नहीं। मानव आत्मा का शिल्पी अपनी साधना से चाहे तो मानवीय संवेदना के वृत्त में सारी पृथ्वी समेट सकता है। कवि की आत्मनिष्ठता कविता की व्यक्तित्व संपन्नता में रूपांतरित हो जाए, यही श्रेय है। आत्मदान और आत्मांधता जैसे अतिवाद इस प्रक्रिया में बाधक हैं। एक आत्म सजग कवि अपनी कविता-यात्रा में इनके समानांतर चलकर ही कुछ वैसी कविताएँ भी लिख पाता है जो उसके समय और समाज की आलोचना होने पर भी भाषा की संस्कृति को उदाहरण बनने की योग्यता देती हैं। यहाँ मेरा प्रस्ताव है कि मुक्तिबोध-अज्ञेय-नागार्जुन से लेकर राजेश जोशी-ज्ञानेंद्रपति तक की कविताओं में समय और समाज की जो आकृति उभरती है, उसे कवि व्यक्तित्व से अलग करके देखना न देखने की तरह है। ये सभी उस कोटि के कवि हैं जिनके पास अत्यंत प्रखर आलोचना-दृष्टि होती है। शायद इसलिए ये अन्य की आलोचनाओं में इतने खर्चीले साबित नहीं हुए हैं कि अपने बारे में 'चिराग तले अँधेरा' चरितार्थ करें।" (पृ.-6)

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक कवि को एक सटीक शीर्षक के अंतर्गत विवेचित किया गया है। मुक्तिबोध विषयक लेख का शीर्षक है—'मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते।' कविता की यात्रा व्यष्टि से समष्टि तक की यात्रा है और निस्संदेह मुक्तिबोध अथक यात्री हैं। मुक्तिबोध पर रेवतीजी की यह टिप्पणी कितनी सटीक और समग्र है—"मुक्तिबोध सरीखे कवि शब्द-व्यापारी नहीं होते, वे अभाव और उत्पीड़न के कारकों को निर्मूल करने के उद्देश्य से शब्द-कर्म में संलग्न होते हैं, अतः दुनिया के मजे-लूटने को लालायित सांप्रदायिक विद्वेष, जाति-दंभ और वर्ग-विभाजित समाज के संरक्षकों के लिए वे पूरी तरह अग्राह्य होते हैं। जबकि सर्व-साधारण में व्याप्त जड़ता, अज्ञानांधकार और रूढ़िवादिता से लड़ने के लिए आगे बढ़ने वाले प्रत्येक विश्व-मानव के हित में इनकी कविताएँ साहस और शक्ति का अक्षय-अछीज स्रोत होती हैं।" (पृ.-9)

धूमिल की 'पटकथा' की मूल संवेदना को उन्होंने इस शीर्षक में व्यक्त किया है—'बुराई के खिलाफ बगावत का ढंग'। वैसे यह पंक्ति महाप्राण निराला की है, किंतु यहाँ रेवतीजी ने उसका समुचित उपयोग किया है। अपने विवेचन के क्रम में रेवतीजी दूसरों का कथन भी उद्धृत करते हैं, किन्तु हर कवि के संबंध में उनकी स्थापनाएँ अपनी हैं और प्रामाणिक हैं। रेवतीजी ने कवियों की मूल संवेदना की खोज ही नहीं की है, उनका मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष भी दिया है। केदारनाथ सिंह की

कविताओं पर उनका निष्कर्ष है—"केदार की कविताओं के स्वरूप-निर्धारण के संबंध में विवाद हो सकता है, पर इतना निर्विवाद है कि उनकी कविता में सामान्य-साधारण चीजों की उपस्थिति नगण्य नहीं है। कवि की उपेक्षित और अनकहे सत्य पर दृष्टि गई है, उससे कवि की आत्मीयता भी प्रकट है। केदार किसी कवि के लिए इससे बड़ी उपलब्धि दूसरी नहीं मानते कि उसकी कविताएँ लोगों में और यहाँ तक कि चीजों में भी बार-बार जन्म लेते रहने की इच्छा बनाए रखने में सफल हों।" (पृ. -87)

'समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य' रेवतीजी की दूसरी आलोचना-पुस्तक है, जो 1994 में नवनीत प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुई। इस संग्रह में भी रेवतीजी की काव्यालोचना-दृष्टि अपनी व्यापकता और गहराई का साक्ष्य देती है। संग्रह का पहला लेख शमशेर पर केंद्रित है। शमशेर को बिंबों का कवि कहा जाता है। एक साथ उन्हें मार्क्सवादी और कलावादी दोनों ठहराया जाता है। रेवतीजी का कथन है—"शमशेर शुरू-शुरू में अपने पाठकों को असमंजस में डाल देते हैं। निर्णय करना कठिन होता है कि कौन वास्तविक है? 'वासना डूबी/ शिथिल पल में/ स्नेह काजल में लिए अद्‌भुत रूप कोमलता' का चितेरा अथवा 'फिर वह एक हिलोर उठी! गाओ' का उद्‌बोधन-रचयिता? कौन शमशेर असली है? प्रगतिवादी या बिंबवादी-प्रतीकवादी-आधुनिकतावादी नवरहस्यवादी? मुझे लगता है दोनों ही सच हैं—कलावादी और मार्क्सवादी भी—एजरा पाउंड और पाब्लो नेरूदा बारी-बारी से। हिंदी के कवियों में पंत और निराला दोनों जिसके प्राण में बसे हों, वह शमशेर ही होगा—अतः इस या उस मतवाद के हिस्से उनका आधा-अधूरा ही हाथ आए तो क्या आश्चर्य? व्यक्तिगत रूप से मुझे शमशेर की ये पंक्तियाँ अत्यंत प्रिय हैं—

सौ महाभारत निछावर
एक किलकारी भरे आनंद की छवि पर
आदमी की अमरता कवि है
और इस शब्द के मानी बहार है।"

इस संग्रह में शमशेर के अतिरिक्त अन्य विवेचित कवि हैं—त्रिलोचन, विजेंद्र, रामविलास शर्मा (मध्यप्रदेश वाले), शलभ श्रीराम सिंह, भगवत रावत, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश। इनके साथ इसमें अनेक नवीनतम कविता-संग्रहों की समीक्षा भी है। केदारनाथ सिंह के संग्रह 'अकाल में सारस', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के 'आखर अनंत', लीलाधर जगूड़ी के 'भय भी शक्ति देता है', प्रयाग शुक्ल के 'अधूरी चीजें तमाम', ऋतुराज के 'सुरत-निरत', अरुण कमल के 'केवल अपनी धार' और 'सबूत', ओम भारती के 'कविता की आँख' और 'इस

तरह गाती है जुलाई', मदन कश्यप के 'लेकिन उदास है पृथ्वी', देवी प्रसाद मिश्र के 'प्रार्थना के शिल्प में नहीं', अग्निशेखर के 'किसी भी समय' और राजा खुगशाल के 'सदी के शेष वर्ष' की अत्यंत धारदार समीक्षाएँ इस संग्रह के महत्त्व को बढ़ा देती हैं। युवा कवि अग्निशेखर के पहले संग्रह 'किसी भी समय' की समीक्षा के क्रम में वे लिखते हैं—''अग्निशेखर युवाओं में सबसे ज्यादा लहूलुहान हैं। वे इस दृष्टि से सबसे अलग हैं कि तथाकथित धर्मनिरपेक्षता और दिखावे की प्रगतिशीलता की पूँछ उठाकर देखते-दिखाते हैं, स्वयं धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील रहकर। आत्मा को भी व्यापार की वस्तु समझने वाली कुत्सित राजनीति इतनी पतिता हो जाएगी कि हमारा हर दिन एक और विस्थापन का, एक और विभाजन का दिन होगा, किसने सोचा था? कल्पनातीत है यह पतन, जिसे अग्निशेखर की कविताएँ ईमानदारी से व्यक्त करती हैं। कुत्सित राजनीति के विरुद्ध, कुटिल प्रवंजना के विरुद्ध मानवीय धरातल पर आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति का उत्कट प्रयास, अग्निशेखर को अलग से पहचान के योग्य ठहराता है।'' (पृ.-170)

इस संग्रह की आलोचना और पुस्तक-समीक्षाओं में आलोचक की सहृदयता अभिभूत करती है। वे रचना से संवाद करते हुए उसके वैशिष्ट्य को उजागर करते हैं।

रेवतीजी ने साहित्य अकादेमी के लिए दो कवियों पर विनिबंध भी लिखा है। पहला विनिबंध 'मैथिलीशरण गुप्त' 1996 में प्रकाशित हुआ। गुप्तजी की काव्य-संवेदना और उनके साहित्य-विवेक को इस पुस्तक में पूरी सजगता के साथ विश्लेषित किया गया है। भूमिका में ही रेवतीजी ने लिखा है—''कुछ कवि ऐसे होते हैं जो अपने सहज ज्ञान पर आधारित कविता लिखकर समय को इतिहास की धारा में गौरवशाली बना देते हैं। उनसे भिन्न कुछ कवि ऐसे भी होते हैं जो अपनी कालानुसरण की क्षमता से जातीय संवेदना को ही नई भंगिमा में पुनर्प्रस्तुत कर देते हैं। मैथिलीशरण गुप्त दूसरे प्रकार के ही कवि प्रतीत होते हैं। उन्हें मध्यकालीन सगुणमार्गी कवियों की परंपरा में आधुनिक काल का एक समर्थ वैष्णव कवि होने का गौरव प्राप्त है। उनमें राम काव्य और कृष्ण काव्य की धाराएँ नए युग-संदर्भ के उद्घाटन में सहायक बनी हैं। गुप्तजी की निश्चल भक्ति-भावना संप्रदायवादी संकीर्णता को चुनौती देती प्रतीत होती है। मध्यकालीन भक्तों की भाँति उनके भी काव्य में भावनात्मक ऐक्य का उद्देश्य निहित है। गुप्तजी के लिए मातृभूमि सर्वेश की सगुण मूर्ति है, जो शताब्दियों की दासता से मुक्ति के लिए भारत-पुत्रों का आवाहन कर रही है। गुप्तजी दासता को पशुतुल्य मानते हैं। उनकी धार्मिकता स्वभावतः परदुःखकातर होने से देश और जाति के उद्धार के दायित्व-निर्वाह में तत्पर

लक्षित होती है।'' (पृ. 7) इस विनिबंध में गुप्तजी की रचना-यात्रा का क्रमिक विकास भी दिखाया गया है और 'साकेत' और 'जयभारत' जैसी कृतियों की विशेषता भी उजागर की गई है। निष्कर्ष के रूप में रेवतीजी लिखते हैं ''गुप्तजी का काव्य अधिकांश में आज भी उपयोगी और प्रासंगिक है तो इसलिए कि वह देश प्रेम की भावना से आपूरित है। वह प्रकृत रूप में हमारा जातीय संगीत है। गुप्तजी इस दृष्टि से अनोखे और व्यक्तित्व संपन्न कवि हैं कि आधुनिकतावाद के विरुद्ध उनका रचनात्मक संघर्ष बिना व्यवधान के ही समझ में आ जाता है। उनका काव्य-स्वर स्पष्ट और प्रभावशाली है और उनकी जनसंबद्धता को कलात्मक होने का न कोई दंभ है, और न कोई लोभ।'' (पृ.-97)

दूसरा विनिबंध त्रिलोचन पर केंद्रित है। इसका प्रथम संस्करण 2011 में प्रकाशित हुआ। मैथिलीशरण गुप्त वाले विनिबंध में रेवतीजी ने मुख्य रूप से उनकी काव्य-रचनाओं पर ध्यान केंद्रित किया है, किंतु 'त्रिलोचन' शीर्षक विनिबंध में त्रिलोचन के गद्य-साहित्य पर भी विमर्श है। त्रिलोचन के गीत, उनकी गजल और रुबाई, उनके सॉनेट—सब पर आलोचक ने गहरी दृष्टि डाली है। इस विनिबंध के एक प्रकरण का शीर्षक ही है—'कविता का त्रिलोचन-पथ'। इसमें रेवतीजी त्रिलोचन के प्रकृति-चित्रण के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए लिखते हैं—''प्रकृति का निश्छल सान्निध्य विश्व कवि रवींद्रनाथ को मिला था। पंतजी को भी उसने पर्याप्त उपकृत किया था। त्रिलोचन के काव्य-मार्ग पर तमाम तरह के फूलों-वृक्षों की सुगंध और छायाएँ हैं। त्रिलोचन नाक की सीध में नहीं चले हैं। अपनी समस्त इंद्रियों को सजग रखकर रंग, गंध, आस्वाद का आनंद लेते हुए आगे बढ़े हैं। उन्हें कोई चित्रकार नहीं कहता, लेकिन वह जिस तन्मयता से 'शब्दों में जीवन का चित्र' बनाते हैं, वैसी तन्मयता उनके समकालीनों में नहीं मिलती। उनके एक सूर्यास्त का चित्र देखिए—

अपनी आँखों देखा, रवि ने जाते-जाते
ली अबीर की मूठ, रसा की ओर चला दी
लाली खिल-सी उठी। रात ने आते-आते
धीरे-धीरे सहम-सहमकर छुआ-ढला दी
स्वर्ण धूलि से परिधि लौह की और गला दी
धातु सघन संचित आशा की। हारी-हारी
आँखें तारों में जा अटकीं। अमृत-कला दी
वक्र चंद्र ने।....'' (पृ.-83)

त्रिलोचन के गद्य पर टिप्पणी करते हुए रेवतीजी का कथन है—''स्पष्ट है कि त्रिलोचन का गद्य उनके कवि-कर्म का अनुपूरक है। लेकिन वह सब समय काव्य का अनुषंग नहीं है, 'कविता की कर्मशाला का केवल एक सहउत्पाद' नहीं है। उनके

गद्य-लेखन का प्रयोजन सुस्पष्ट है, जबकि उन्होंने गद्य रचनात्मक और आलोचनात्मक प्रचुर लिखा है। उनका आख्यानपरक लेखन वर्णनात्मक है, पर उसमें गद्य का मिजाज आत्मीय है। जीवंत इस वजह से भी हुआ है कि वह जीवन का जीवन से खुला संवाद है।'' (पृ.-116)

'कविता में समकाल' रेवतीजी की काव्यालोचना संबंधी अवधारणा का जीवंत दस्तावेज है। रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा से 1999 में प्रकाशित इस आलोचना-पुस्तक में निराला और उनके बाद की पीढ़ी के प्रगतिशील कवियों की रचना-प्रक्रिया पर गहन विमर्श है। 'काव्य-विमर्श : निराला' रेवतीजी की अत्यंत महत्त्वपूर्ण आलोचना-पुस्तक है। 2001 में अभिधा प्रकाशन ने इसे प्रकाशित किया था। इस पुस्तक की भूमिका में रेवतीजी ने लिखा है—''बीसवीं शताब्दी की हिंदी कविता में अकेले निराला हैं, जिन्हें महाप्राण, अपराजेय, महायाज्ञिक प्रतिभा कहा गया है। उन्हें 'काव्य का देवता', 'दूसरा कबीर' होने का गौरव प्राप्त है। उनकी प्रेरणा और सान्निध्य प्राप्त कर 'लघु मानव लघु परिवेश' के दौर में भी अनेक बड़ी प्रतिभाएँ उभरकर आ सकीं। जो जितना उनके निकट गया, उसे वे उतने ही बड़े लगे।'' इस पुस्तक में रेवती जी ने निराला के आत्म-संघर्ष और उनके महाप्राण व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को सतर्क रेखांकित किया है। 'जूही की कली', 'बादल-राग', 'वन-बेला', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्ति-पूजा' और 'कुकुरमुत्ता' जैसी काव्य रचनाओं के महत्त्व और उनकी कालजयिता पर विचार किया है। मुक्तछंद के समर्थ प्रयोक्ता निराला हिन्दी के श्रेष्ठतम गीतकार भी हैं। रेवती जी ने उनकी गीति-कला के वैशिष्ट्य को भी विश्लेषित किया है। पुस्तक के अंत में रेवतीजी का यह कथन कितना सार्थक और सारगर्भित है—''पंत जी कविता के सुकुमार मार्ग पर चल रहे थे, उन्होंने अपने तर्क स्त्रैण भावों की अभिव्यक्ति के लिए गढ़े हैं। निराला ओज और पौरुष के कवि हैं। उनका मुक्त छंद कविता की स्त्री-सुकुमारता के विरुद्ध कवित्व का पुरुष-गर्व है, सिन्धु राग है। निराला का यह तर्क अकाट्य है कि 'भावों की मुक्ति छंद की भी मुक्ति चाहती है।' तथापि 'आर्ट ऑफ म्यूजिक' को 'आर्ट ऑफ रीडिंग' से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता। दोनों ही मुक्त छंद के अभिन्न आधार हैं और ये नाद और लय को कसे हुए होते हैं।'' (पृ. 200)

रेवतीजी ने अनेक काव्य-रूपों की मूल प्रकृति का संधान किया है। 'महाकाव्य से मुक्ति' में उन्होंने हिन्दी की प्रसिद्ध प्रबंध-कविताओं की गहन व्याख्या की है। 2000 ई० में अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित इस पुस्तिका में 'राम की शक्ति-पूजा', 'कुकुरमुत्ता', 'ब्रह्मराक्षस', 'अँधेरे में', 'असाध्य वीणा', 'अकाल और उसके बाद', 'बादल को घिरते देखा है' तथा 'हरिजन गाथा' की पाठ-केन्द्रित समीक्षाएँ हैं। रचना के मर्म तक पहुँचकर उसकी मूल संवेदना को अत्यंत सहजता

से रेखांकित कर देना रेवतीजी के आलोचक का वह विशिष्ट गुण है, जिसकी वजह से वे अलग से ही पहचान लिए जाते हैं। पुस्तिका का पहला लेख 'विलक्षण तीसरा स्थापत्य' में महाकाव्य से मुक्ति के कारणों और उसके परिणाम का विवेचन है। साथ ही, संकलित आलोचनाओं की पृष्ठभूमि भी इसमें स्पष्ट कर दी गई है। रेवतीजी लिखते हैं—"एक और कामायनी लिखकर निराला अपने समय की एक बड़ी प्रतिभा के अनुकर्ता ही कहलाते, 'निराला' नहीं होते। इस तरह एक बड़ी और कठिन चुनौती ने ही मुक्तक और प्रबंध से सर्वथा अलग हिंदी कविता का एक विलक्षण तीसरा स्थापत्य 'राम की शक्ति-पूजा' के प्रणयन का मार्ग प्रशस्त किया होगा। 'कामायनी' प्रबंध के सर्वश्रेष्ठ स्थापत्य को देखते हुए, उसकी संरचनात्मक चुनौती को महसूस करते हुए निराला ने एक अलग रास्ता चुना। 'राम की शक्ति-पूजा' एक नई संरचना है, एक ऐसी संरचना जिसमें प्रबंध की काया नहीं, आत्मा को स्वर देने की आकांक्षा निहित है। पुरातन की पुनरावृत्ति से परहेज की सतर्कता के साथ।" (पृ.-7-8)

रेवतीजी समर्पित और निष्ठावान अध्यापक रहे हैं। विद्यार्थियों को उद्बोधित करना और उनकी मेधा को तीव्र करना उनके स्वभाव में शामिल है। विद्यार्थियों की समस्याओं से रू-ब-रू होते हुए उन्होंने पाठ्यक्रम में सम्मिलित 'स्कंदगुप्त', 'चिंतामणि' और 'भारत-दुर्दशा' की पाठोन्मुख व्याख्या की है। अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद से ही 1999 में 'भारत-दुर्दशा : कथ्य और शिल्प', 2000 ई० में 'चिंतामणि-प्रकाश' और इसी वर्ष 'प्रसाद और उनका स्कंदगुप्त' जैसी उपयोगी आलोचना-पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों में कृतियों की संवेदना और शिल्प के वैशिष्ट्य को अत्यंत गहराई के साथ विवेचित किया गया है। ये पुस्तकें प्रमाण हैं कि रेवतीजी अपने समय के कितने समर्थ और छात्रोन्मुख अध्यापक रहे हैं। इसी क्रम में 'हिंदी आलोचना : बीसवीं शताब्दी' का उल्लेख भी किया जा सकता है। अभिव्यक्ति प्रकाशन से 2002 में प्रकाशित इस पुस्तक में हिंदी आलोचना की जातीय परंपरा पर गहन विमर्श किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पं. शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ० नगेंद्र, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध और डॉ० नामवर सिंह के साथ हिंदी के रचनाकार आलोचकों प्रेमचंद, निराला, दिनकर, अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, निर्मल वर्मा, कुँवर नारायण, काशीनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के आलोचनात्मक लेखन की शक्ति और दिशाओं का सतर्क विवेचन किया गया है। रेवतीजी ने हर आलोचक की मूल प्रकृति को अत्यंत सजगता और सफाई के साथ उजागर किया है।

'जातीय मनोभूमि की तलाश' 2005 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित एक गंभीर आलोचना-पुस्तक है। यह अलग-अलग विषयों पर लिखे गए आलोचनात्मक

लेखों का संग्रह है। भक्ति-आंदोलन, विनय-पत्रिका, गांधीजी की आत्मकथा, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, झरना, अज्ञेय और शेखर : एक जीवनी, गान गीत गर्म कालिदास जैसी कृतियों और कृतिकारों के अतिरिक्त इसमें जातीय मनोभूमि की तलाश और मार्क्सवादी साहित्येतिहास-दृष्टि पर भी रेवतीजी की नवीन स्थापनाएँ अंकित करती हैं। ज्ञानरंजन की कहानियों पर भी उनका लेख अत्यंत गंभीर और मर्मस्पर्शी है। उनकी पंक्ति है—"ज्ञानरंजन की कहानियाँ भी एक ऐसा वक्तव्य हैं, जिनमें उनका व्यक्तित्व खिलखिला रहा है।" (पृ.-137)

'सर्जक की अंतर्दृष्टि' 2007 में समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर द्वारा प्रकाशित लेखक की प्रतिनिधि आलोचना पुस्तक है। आलोचक ने लीक से हटकर उन सर्जकों की अंतर्दृष्टि की तलाश की है, जो या तो ओझल रहे हैं, या जिन्हें अपेक्षित महत्त्व नहीं मिला है। 'हिंदी कविता की भारतीय आत्मा' शीर्षक लेख में माखनलाल चतुर्वेदी पर नये ढंग से विचार किया गया है। रामजीवन शर्मा 'जीवन', ललित कुमार सिंह 'नटवर', नानक, गुरु गोविंद सिंह, रामइकबाल सिंह 'राकेश', अशोक वाजपेयी, भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल, विष्णु खरे जैसे अल्पज्ञात और बहुज्ञात कवियों पर एक साथ विमर्श रेवतीजी की सहज सहृदयता, खोजदृष्टि और गहन अध्ययन का जीवंत प्रमाण है। आलोचक का मूलधर्म होता है रचनाकार की शक्ति का अभिज्ञान और उसकी अंतर्दृष्टि का रेखांकन। रेवतीजी ने इस धर्म का निष्ठापूर्वक पालन किया है। 'परंपरा का पुनरीक्षण' का प्रकाशन 2016 में समीक्षा प्रकाशन द्वारा हुआ था। इसमें 20 आलोचनात्मक लेखक संगृहीत हैं। 'हिंद स्वराज की संकल्पना', 'प्रेमचंद की सुराज मीमांसा', 'प्रेमचंद की प्रगतिशीलता, 'गोदान की झुनिया', 'दिनकर की उर्वशी', 'हिंदी-जाति का साहित्य', 'नेपाली का काव्य', 'नागार्जुन के उपन्यास' आदि के बहाने आलोचक ने हिंदी की जातीय परंपरा का पुनरीक्षण किया है। इस संग्रह के लेखों में वैविध्य भी है और व्यापकता भी।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हिंदी के प्रतिनिधि कवि, गंभीर आलोचक और समर्थ संपादक है। उनके साथ रेवतीजी का चार दशकों का पुराना संबंध है। तिवारी जी की अनेक साहित्यिक यात्राओं के वे सहचर रहे हैं और उनके समस्त साहित्य के गंभीर पाठक भी। उन पर केन्द्रित पुस्तक 'विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : एक मूल्यांकन' 2016 में सामयिक बुक्स, दिल्ली से प्रकाशित हुई थी। इसमें तिवारीजी के सहज व्यक्तित्व और व्यापक कृतित्व पर लेखक ने गंभीरता के साथ विचार किया है। इस आलोचना-पुस्तक में आत्मीयता के साथ विलक्षण तटस्थता है। तिवारीजी के कविकर्म, आलोचना-दृष्टि, संपादन-दृष्टि, गद्य-लेखन और संस्थागत व्यक्तित्व को यह पुस्तक समग्रता में उजागर करती है।

रेवतीजी ने प्रारंभिक दिनों में जमकर पुस्तक-समीक्षाएँ लिखी थीं। नई से

नई पुस्तकों के प्रति उनकी जिज्ञासा और उनके अध्ययन-मनन की गंभीरता की सराहना प्रायः होती रही है। 'उजाड़ में आवाज के परिंदे' वस्तुतः पुस्तक-समीक्षाओं का प्रतिनिधि संकलन है। 2018 में अभिधा प्रकाशन से प्रकाशित इस ग्रंथ में 30 काव्य-कृतियों की गंभीर समीक्षा की गई है। अभी-अभी उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है—'सृजन और विभावन का द्वैताद्वैत'। इस ग्रंथ में 19 आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है और इसमें एक साथ प्रतिनिधि लेखकों और कवियों की शक्ति और स्वभावों का विवेचन हुआ है।

इस प्रकार रेवतीजी का आलोचना-संसार अत्यंत विस्तृत है। उनकी आलोचना में संवाद की प्रवृत्ति है और सहज संप्रेषण की दक्षता भी। उनकी आलोचना-भाषा सर्जनात्मक बोध करती है और पाठ में उतरने के लिए प्रेरित भी।

रेवतीजी के कर्तृत्व का एक पक्ष उनकी संपादन-कला में भी उभरा है। अनेक पत्रिकाओं का संपादन करने के साथ उन्होंने 'उत्तम पुरुष', 'बेड़ियों के विरुद्ध', 'सही का महाराग', 'सप्तस्वर', 'कल्पतरु' और 'आधुनिक भारतीय कविता' संचयन का संपादन किया है। 'उत्तम पुरुष' आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की एक सौ एक कविताओं का संग्रह है। 'बेड़ियों के विरुद्ध' में विश्वनाथ तिवारी की 125 कविताएँ संगृहीत की गई हैं। 'सदी का महाराग' में उद्भ्रांत की एक सौ पच्चीस कविताएँ संकलित हैं। 'सप्तस्वर' में सात युवा कवियों की कविताएँ उनके वैशिष्ट्य रेखांकन के साथ संकलित की गई हैं। 'कल्पतरु' साहित्य और दर्शन के श्लाका पुरुष प्रोफेसर रिपुसूदन श्रीवास्तव का अभिनंदन ग्रंथ है। 'आधुनिक भारतीय कविता संचयन' 1950 से 2010 तक की प्रतिनिधि हिंदी कविताओं का संग्रह है जिसमें 82 कविताओं की रचनाएँ संगृहीत हैं। साहित्य अकादेमी की ओर से प्रकाशित इस संग्रह के संपादक हिंदी के प्रतिनिधि कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हैं और सहसंपादक के रूप में रेवतीजी ने उनका सहयोग किया है।

इस प्रकार रेवतीजी का कृतित्व अत्यंत व्यापक है और उनका व्यक्तित्व अत्यंत आत्मीय! प्रस्तुत पुस्तक इसी व्यापकता और आत्मीयता को पाठकों के सामने लाने का एक विनम्र प्रयास है। इस पुस्तक में कई पीढ़ियाँ एक साथ सम्मिलित हैं। रेवतीजी के दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार भी इसमें संकलित हैं। यह एक मनीषी की विचारयात्रा के कुछ पड़ावों को देखने-परखने की पहल है। एक सारस्वत प्रतिभा के प्रति यह एक आधार-ग्रंथ भी है और एक रचनाकार और आलोचक के कृतित्व का मूल्यांकन ग्रंथ भी।

—सतीश कुमार राय

❒